PARIPEX - INDIAN JOURNAL OF RESEARCH | Volume-9 | Issue-2 | February - 2020 | PRINT ISSN No. 2250 - 1991 | DOI : 10.36106/paripex

ORIGINAL RESEARCH PAPER

Hindi

मोहन राकेष के नाटकों में अंतर्निहित सामाजिक सन्दर्भ

KEY WORDS:

डॉ0 कंचन कुमारी

सहायक प्रोफ़ेसर हिन्दी राजकीय महाविद्यालय बन्जार कुल्लू हि0प्र0 175123

हिन्दी नाटक साहित्य में भारतेन्दु और प्रसाद के बाद यदि लीक से हटकर कोई नाम उभरता है तो वह नाम मोहन राकेष का है। मोहन राकेष का जन्म अमृतसर की जंडी वाली गली में 8 जनवरी 1925 को हुआ। इनके पिता का नाम कर्मचन्द गुगलानी था। प्रारम्भ में मोहन राकेष का नाम मदन–मददी रखा गया जो बाद में हिन्दी साहित्य के विषाल गगन में राका के समान मन को मोहने वाला मोहन राकेष के रुप सर्वत्र जाना गया। मोहन राकेष का परिवेष बहुत अच्छा नहीं था। इनके परिवार में अंधविष्वासों का प्रबल प्रकोप था। वे यहां तक लिखते हैं कि, "मेरे कान में दर्द होता है या आँख दुखनी आ जाती है तो इसकी वजह यही होती थी कि रण्डी गुरदिई या खसमखानी ठग्गे की मां दरवाजे पर मिर्चें डाल गयी थी।"1

स्पश्ट है कि मोहन राकेष जिस परिवेष में रहते थे वहां लोग जादू–टोने और भूतों को भगाने जैसी प्रचलित रुढ़ियों के लिए मिर्च को आग में जलाना जैसे कार्य करते थे। मोहन राकेष के घर का आर्थिक परिवेष भी अनुकूल नहीं था। उनके घर कर्जा वसूल करने वाले लोगों की लाईनें लगी रहती थी। मोहन राकेष के षब्दों में, "कर्जा वसूल करने घर आने वालों से मदन को कहना पड़ता था कि पिता जी घर में नहीं है......घर में कोई भी अच्छी चीज़ आए तो लोगों के सामने खाने–पहनने की मनाही है..... खुलकर जीने की हर कामना उस दिन की कील पर टंगी रहती है जिस दिन निहाल सिंह का कर्ज उतरेगा।"2 कहा जा सकता है कि कर्ज अधिक होने के कारण लेखक का परिवार सम्पन्न साधनों का प्रयोग लोगों के सामने नहीं कर सकते थे लोगों का सामने खुलकर वे तभी सम्पन्नता का चीज़ों का प्रयोग कर सकते थे जब वे कर्ज से मुक्त हो जाए।

मोहन राकेष का रचना संसार विस्तृत है। मोहन राकेष ने कहानी, उपन्यास, नाटक, निबन्ध, आलोचना, यात्रा–वृतांत, अनुवाद, अनुवाद और संस्मरण, लिखे हैं। पर नाटक साहित्य को मोहन राकेष ने एक नई ज़मीन पर खड़ा किया है। मोहन राकेष द्वारा लिखित नाटक हैंः– 'आशाढ़ का एक दिन' (1958), 'लहरों के राजहंस' (1963), 'आधे अधूरे' (1969) 'पैर तले की जमीन'। 'पैर तले की ज़मीन' उनके मरणोपरांत प्रकाषित हुआ है। मोहन राकेष के नाटकों की कथावस्तु उनके वास्तविक जीवन से प्रभावित रही है। जब कोई कृतिकार सर्जना पथ पर बढ़ता है तब उसके मन में कोई न कोई संदर्भ होता है, कोई न कोई उद्देष्य होता है। मोहन राकेष ने अपने नाटकों की सर्जना सामाजिक सन्दर्भ में की है। उनके नाटकों में सामाजिक सन्दर्भ है। समाज में परिवार की स्थिति, पति–पत्नी सम्बन्ध, व्यक्तिगत सम्बन्ध, नारी–पुरुश के जीवन की त्रासदी की अभिव्यक्ति है। इनके नाटकों में अलगाव और अकेलेपन की चित्रण किया गया है।

सन् 1958 में प्रकाषित मोहन राकेष का नाटक 'आशाढ़ का एक दिन' कालिदास के जीवन पर आधारित तीन अंको का नाटक है। 'आशाढ़ का एक दिन' नाटक सुद्देष्य रचना है। नाटक का कथानक ऐतिहासिक है। "हिन्दी के तथाकथित ऐतिहासिक नाटकों में आशाढ़ का एक दिन इसलिए मौलिक रुप से भिन्न है कि इसमें अतीत के न तो तथाकथित विवरण है न पुनरुत्थानवादी गौरव–गान, न भावकुतपूर्ण अतिनाटकीय स्थितियां रचने की कोषिष करता है। इसकी दृश्टि कहीं अधिक आधुनिक है जिसके कारण वह सही अर्थ में आधुनिक हिन्दी नाटक की षुरुआत का सूचक है।"3

मोहन राकेष ने इस नाटक में एक ओर तो इसमें पुरुश की अहवृति की षिकार बनी नारी की विवष स्थितियों का उद्घाटन किया है तो दूसरी ओर कालिदास के अंतर्द्वंद के माध्यम से इस तथ्य का उद्घाटन किया है कि राज्याश्रय साहित्यकार की प्रतिभ की धार को कुंठित कर देता है। पुरुश की अहमन्यता का षिकार बनी भावप्रवण नारी मल्लिका की दषा के प्रति करुणा की भावना ही इस नाटक का प्राथमिक सामाजिक सन्दर्भ है। मुख्य पात्र मल्लिका की मां अम्बिका भावनाओं और आवष्यकताओं का हवाला देती हैं, तभी मल्लिका कहती है, "मैं जानती हूँ माँ कि अपवाद होता है। तुम्हारे दुःख को भी जानती हूँ फिर भी मुझे अपराध का अनुभव नहीं होता। मैंने भावना में भावना का वरण किया है। मेरे लिए वह संबध और सब संबंधों से बड़ा हैं। मैं वास्तव में अपनी भावना से ही प्रेम करती हूँ जो पवित्र है, कोमल है, अनष्वर है।"4 स्पश्ट है मल्लिका कालिदास के प्रति भावनाओं से पूर्ण है। वह किसी भी प्रकार के षारीरिक प्रेम को महत्व नहीं देती। अपनी प्रेम की भावनाओं को पवित्र और अनष्वर बताती है। इसे सुनकर अंबिका की उत्तेजना इन षब्दों की सीमा में बंधकर सामने आती है, "और मुझे ऐसी भावना से वितृश्णा होती है। पवित्र, कोमल और अनष्वर।.....तुम जिसे भावना कहती हो वो केवल छलना और आत्मप्रवचंना है। तुमने भावना में भावना का वरण किया है।....मैं पूछती हूँ भावना में भावना का वरण क्या होता है? उससे जीवन की आवष्यकताएं किस प्रकार पूरी होती है?"5

अम्बिका अपनी बेटी के लिए चिन्तित है। अम्बिका जानती है कि कालिदास एक बड़ा ही आत्मकेन्द्रित व्यक्ति है। वह मल्लिका से वास्तविक प्रेम नहीं करता है, अपितु अम्बिका की दृश्टि से वह मल्लिका को अपनी अहमन्यता का षिकार बनाये हुए है। मल्लिका एक भावनामय नारी है। वह कालिदास को उज्जयिनी जाने को विवष करती है, "मेरी ओर देख (कुछ क्षण कालिदास उसकी आंखों में देखता है) अब भी उत्साह का अनुभव नहीं होता है? विष्वास करके सुन वहां से जाकर भी यहां से विच्छिन्न नहीं हो ओगे।....यहां की वायु, यहां के मेघ, यहां के हरिण, इस सबको तुम साथ ले जाओगे..... । और मैं भी तुमसे दूर नहीं रहूंगी। जब भी तुम्हारे निकट होना चाहूंगी पर्वत षिखर पर चली जाऊंगी और उड़कर आते हुए मेघों में नाचा करुंगी।"6 मल्लिका का यही कथन उसके परवर्ती जीवन का केन्द्र बन जाता है। अंहवादी कालिदास मल्लिका से कट जाता है और उसे यह याद तक नहीं रहता कि वे अपने ही गांव में अपनी बाल सहचरी छोड़ आया है, उसे ही छोड़ देने में कालिदास को एक पल भी नहीं लगा। यही पुरुश की अहमन्यता है, जिससे मल्लिका छली गयी है। ग्राम प्रांतर में आकर भी कालिदास मल्लिका से नहीं मिलता।

कालिदास मल्लिका से मिलना उचित नहीं समझता है कि कहीं उसकी प्रेमिल आंखे उन्हें उनके मार्ग से विचलित न कर दें। कालिदास की कैसी अहमन्यता है कि वे राजधानी में रंगरेलियां मनाते रहें। प्रियंगुमंजरी से विवाह करके भी वीरांगनाओं के आंचल में अपना मुंह छिपाते रहे और इतने पर भी वे मल्लिका के सम्बन्ध में सोचते रहे कि वह अभी भी अपनी कौमार्यावस्था का अर्ध्य लेकर अपनी प्रेमिल अनुभूतियों के दीप सजाकर मेरी आरती उतारने को गृह द्वार पर प्रतीक्षा में होगी। इस भाव का वर्णन इस प्रकार किया गया है, "मैं अपने को विष्वास दिलाता रहा हूं कि कभी भी यहाँ से लौटकर आऊं सब कुछ वैसा ही होगा।"7

लहरों के राजहंस की भूमिका में मोहन राकेष ने कालिदास के अंतर्द्वंद्व के विशय में जो उद्गार व्यक्त किये हैं, उनसे यह भी स्पश्ट होता है कि कलाकार के अंतर्द्वंद्व को नाटककार ने स्पश्ट किया है। उनके षब्दों में, "कालिदास मेरे लिए एक व्यक्ति नहीं, हमारी सृजनात्मक षक्तियों का प्रतीक है। नाटक में यह प्रतीक उस अंतर्द्वंद्व को संकेतिक करने के लिए है जो किसी भी काल में सृजनषील प्रतिभा को आंदोलित करता है। व्यक्ति कालिदास को उस अंतर्द्वंद्व से गुजरना पड़ा या नहीं यह बात गौण है, मुख्य बात यह है कि हर काल में बहुतों को उससे गुजरना पड़ता है और हम आज भी इससे गुजर रहे हैं....सृजनात्मक प्रतिभा के लिए इससे अच्छा नाम मुझे नहीं मिला।"8

आशाढ़ का एक दिन' की प्रेमिल और यथार्थ बोध के साँचे में ढली हुई अनुभूतियों को पार करता हुआ नाटककार जिस बिन्दु की ओर बढ़ा है उसके पार्ष्व में 'लहरों के राजहंस' का बिम्ब मन की अटल गहराइयों से झांकने लगता है। 'आशाढ़ का एक दिन' यदि भावना में भावना के वरण की कहानी है तो लहरों के राजहंस नारी के आकर्शण और विकर्शण की अनुभूति की अभिव्यक्ति है। एक में यदि समर्पित नारी की नियति का चित्र है तो दूसरे में रुप के नाम पर सांस लेने वाली सुंदरी नारी की सौंदर्यानुभूति और उसकी विविध मन स्थितियों के संदर्भों का आलेख है। कालिदास में यदि राज्याश्रय और प्रभुता के वरण का लोभ है तो नंद प्रवृति और निवृति के द्वंद्व में पिस्कर छटपटाते हुए प्राणों को लेकर युग जीवन के उस चौराहे पर आ खड़ा हुआ है जहां चारों रास्ते एक साथ मिलकर उसे निगल जाने को तत्पर है।

लहरो के राजहंस' में कपिलवस्तु के राजकुमार नंद के बौद्ध भिक्षु बनने और उसकी पत्नी सुन्दरी के रुप–गर्व की कथा है। इस नाटक में पुरुश के जीवन की त्रासदी को गौतम बुद्ध के बढ़ते प्रभाव के माध्यम से नन्द के जीवन की त्रासदी अभिव्यंजित की गई है। नन्द को एक तरफ सुन्दरी की रुपाषक्ति अपनी और आकर्शित करती है, दूसरी तरफ गौतम बुद्ध का प्रभाव अपनी तरफ। इन्हीं दोनों पाटों के मध्य वह आगे बढ़ता है। परिणामतः वह न तो पूर्ण रुप से भिक्षु बन पाता है और न पूर्ण रुप से सुन्दरी का आत्मीय।

किसी का विष्वस्त तथा आत्मीय न बन पाना उसके जीवन की बहुत बड़ी त्रासदी है। नन्द कभी यह नहीं समझ पाता वह कितना किस बिन्दु पर जीने के लिए है। नंद का द्वंद्व उसे समकालीन मनुश्य के बहुत निकट ले जाता है। वह जब तथागत के पास होता है तो उसका मन सुंदरी के लिए व्याकुल रहता है। सब जगह वह अपने को अधूरा सा महसूस करता है। नंद कहता है, "मैं चौराहे पर खड़ा नंगा व्यक्ति हूं जिसे सभी दिषाएं लील लेना चाहती है और अपने को ढकने के लिए जिसके पास आवरण नहीं है। जिस किसी दिषा की ओर पैर बढ़ाता हूं, लगता है वह स्वंय अपने ध्रुव पर डगमगा रही है और मैं पीछे हट जाता हूं।"9 भागने के कारण थके हुए मृग की मौत कुछ ओर नहीं है नंद के भीतरी स्तर की ही मौत है। बाहर से जीवित होकर भी नंद जैसे भीतर से मरा हुआ है या कहूं कि धीरे–धीरे वह भीतरी स्तर पर मरता जा रहा है।

मोहन राकेष ने अपने नाटक में जिस प्रकार पुरुश के जीवन की त्रासदी को व्यक्त किया है उसी प्रकार नारी जीवन की त्रासदी को भी उजागर किया है। लहरों के राजहंस में यह त्रासदी की भावना सुन्दरी के माध्यम से व्यक्त हुई है। सुन्दरी की धारणा है कि, "नारी का आकर्शण पुरुश को पुरुश बनाता है।"10 और यह नहीं हो पाता है, क्योंकि नंद अत्यन्त दुविधा से ग्रस्त है। सुन्दरी आवेष में आकर कहती है, "तुम कितने–कितने बिन्दु खोजे है आज तक तुमने?...जाओ एक और बिन्दु खोजो।"11 नंद कुछ देर वहां स्तब्ध सा खड़ा रहता है। फिर आहत भाव से चला जाता है। उसके जाते ही सुन्दरी सिसक उठती है।

स्पश्ट है नाटककार ने नाटक में नारी–पुरुश के सम्बन्धों को रेखांकित करते हुए पुरुश जीवन और नारी जीवन की त्रासदी को रेखांकित किया है। 'आधे–अधुरे' मोहन राकेष का तीसरा नाटक है। यह वह नाटक है जिसमें मोहन राकेष ने अपने कथ्य की संप्रेशित करने के लिए किसी ऐतिहासिक आधार का वरण नहीं किया है। यहाँ नाटककार ने पहली बार आधुनिक परिवेष की पीठिका पर समकालीन जीवन में चलते–फिरते पात्र के सहारे वर्तमानकालिक संवेदना से सीधा साक्षात्कार किया है। नाटक में नारी की मुक्ति भावना, विघटनषील मानव मूल्य, वैवाहिक संबंधों की विडम्बना और पुरुश के अधूरापन को बताया गया है।

नाटक की कथावस्तु महेन्द्रनाथ और सावित्री के टूटते वैवाहिक संबंधो पर आधारित है। साथ रहने के बावजूद भी उनके बीच उपेक्षा, घृणा, खीझ और उपालम्भों की ऐसी दीवारें हैं जो उन्हें परस्पर जुड़ने नहीं देती। सावित्री महेन्द्रनाथ को अधूरा आदमी मानकर उससे खिन्न रहती है और महेन्द्रनाथ सावित्री के व्यवहार को देखकर दुःखी रहता है। स्त्री पुरुश को अर्थपूर्ण पारस्परिक संबंध में बांधने वाला एक तत्व प्रेम या सेक्स माना जा सकता है। प्रेम या सेक्स की एक षर्त पूर्ण आत्मसमर्पण या आत्मविस्मरण भी है। सावित्री में उसका अभाव है। वह ठीक अपने नाम के विरुद्ध पति से विमुख है और अनेक पुरुशों से संपर्क बनाती है। महेन्द्रनाथ सावित्री से संवाद करती हुई कहती है, "पर बात तो मेरे घर की हो रही है।"12

सावित्री व्यंग्य से कहती है, "तुम्हारा घर। हूं हूं....सचमुच तुम अपना घर समझते इसे तो....दस साल पहले कहना चाहिए था, मुझे जो कहना चाहते हैं।"13 स्पश्ट है कि पति–पत्नी के सम्बन्धों में बिखराहट है और इस बिखराहट का कारण आर्थिक और सावित्री का दूसरे पुरुशों से सम्बन्ध बनाना है। महेन्द्रनाथ मन में भरी हुई कटुता और तिक्ता को पी जाने में असमर्थ होने से अपनी पत्नी के अंतर्मन को व्यंग्य बाणों से भेदता रहता है। पहले वह जैसा था उसके बारे में यह कथन उसके दूसरे रुप को ही स्पश्ट करता है, "महेन्द्र अब पहले की तरह हरत्व नहीं। महेन्द्र अब दोस्तों में बैठकर पहले की तरह खिलता नहीं। महेन्द्र अब पहले वाला महेन्द्र नहीं रहा है।"14

वह पहले हंसमुख था, दोस्तों का चहेता था। उसने कभी अपने मित्र जुनेजा के साथ मिलकर प्रैस खोला? तो कभी फैक्टरी में हिस्सेदार बना। भाग्य की विडम्बना ही रही कि उसका व्यवसाय फेल हो गया। परिणामतः उसे पत्नी की कमाई पर चलना पड़ा इसी से वह अपने आप को एक रबड़ स्टैंप के अलावा कुछ नहीं मानता था। अपने इस कमजोर व्यक्तित्व को बताते हुए वह कहता है, "अपनी जिंदगी चौपट करने का जिम्मेदार मैं हूँ। इन सबकी जिंदगिंया चौपट करने का जिम्मेदार में हूँ। फिर भी मैं इससे चिपका हूँ क्योंकि अंदर से मैं आरामतलब हूँ, घर–घुसरा हूँ, मेरी हड्डियों में जंग लगा है। मुझे पता है कि मैं एक एक कीड़ा हूँ, जिसने अंदर ही अंदर इस घर को खा लिया है।"15 महेन्द्रनाथ एक ऐसे व्यक्ति का प्रतीक है जो जीवन की लड़ाई हार गया है। वह पुरुश के अधुरेपन का प्रतीक है।

नाटक में विघटषीलन मानव–मूल्यों की भी बात की गई है। बिन्नी का भाग जाना, अशोक का आवारा होना, किन्नी का गुस्ताख होना, और नये लोगों को एक दूसरे के बाद इस घर में आना। यह सब बातें विघटनषील मानव मूल्यों की ओर संकेत करती है। छोटी होंकर भी किन्नी कितनी खोटी और जिद्दी है, उसमें कितना बडबोलापना है। यह उसके इन कथनों से स्पश्ट होता है। सावित्री के यह पूछने पर कि तू स्कूल से आकर कहां चली गई थी? वह उत्तर देती है, "कहीं भी चली गई थी। घर पर था कोई जिसके पास बैठती यहाँ...दूध गरम हुआ है मेरा? सावित्री, 'अभी हो जाता है, 'अभी हो जाता है। स्कूल में भूख लगे, तो कोई पैसा नहीं होता पास में और घर आने पर घंटा–घंटा दूध नहीं होता गरम।"16 स्पश्ट है कि आधे–अधूरे नाटक में सामाजिक सन्दर्भ के अन्तर्गत पारिवारिक विघटन, स्त्री–पुरुश सम्बन्धों में बिखराहट, विघटनषील, मानव मूल्यों की ओर संकेत किया गया है इसमें सभी पात्र घर की तलाष में है। यह घर की तलाष मोहन राकेष के हर नाटक में है।

पैर तले ज़मीन राकेष का चौथा नाटक है। यह उनके मरणोपरांत प्रकाषित हुआ है यह नाटक कमलेष्वर द्वारा पूरा किया गया है। पति–पत्नी का प्रतिकूल व्यवहार सलमा के जीवन की मूल त्रासदी है। अयूब की उपेक्षा उसकी त्रासदी बनकर आती है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि मोहन राकेष के नाटकों में सामाजिक सन्दर्भ अन्तर्निहित है। उनके नाटकों में मुख्यतः स्त्री–पुरुशों के सम्बन्धों की त्रासदी को दर्षाया गया है। साथ ही साथ पारिवारिक विघटन नारी की मुक्ति भावना पुरुश का अधुरापन, वैवाहिक सम्बन्धों की विडम्बना को बताया गया है। मोहन राकेष के नाटक सामाजिक सरोकारों से युक्त है। मोहन राकेष के व्यक्तिगत जीवन की घर की तलाष उनकी नाटकों में भी दिखाई देती है। अंतः उनके नाटक व्यक्तिगत अनुभव का परिणाम है।

संदर्भ

1. मोहन राकेष, परिवेष, पृ0 23
2. वही, पृ0 8
3. नेमी चंद जैन, नटरंग अंक 21,पृ0 36
4. मोहन राकेष, आशाढ़ का एक दिन, पृ0 21
5. वही, पृ0 22
6. वही, पृ0 57
7. वही, पृ0 113
8. मोहन राकेष, लहरों के राजहंस, भूमिका, पृ 8
9. वही, पृ0 137
10. वही, पृ0 55
11. वही, पृ0 139
12. मोहन राकेष, आधे अधूरे, पृ0 30
13. वही
14. वही, पृ0 101
15. वही, पृ0 45
16. वही, पृ0 35